मौन की भाषा

मैंने सुना है कि अपनी वृद्धावस्था में मुल्ला नसरुद्दीन को गांव का जे पी, जस्टिस ऑफ पीस बना दिया गया। वह न्यायाधीश हो गया।

एक दिन उसकी अदालत में एक मामला आया। एक लकड़हारे ने–जो रोज जंगल से लकड़ियां काटता था और गांव में बेचता था–आकर नसरुद्दीन को कहा कि मैं बड़ी मुसीबत में पड़ गया हूं। उसके साथ एक और आदमी भी था जो बड़ा शक्तिशाली मालूम पड़ता था और खूंखार भी मालूम पड़ता था। उस लकड़हारे ने कहा कि मैं कल दिन भर जंगल में लकड़ियां काटा हूं। और यह जो आदमी है, यह सिर्फ एक चट्टान पर, मैं जहां लकड़ियां काट रहा था, वहां बैठा रहा। और जब भी मैं कुल्हाड़ी मारता था वृक्ष में तो यह जोर से कहता था–हूं! जैसा कि मारने वाले को कहना चाहिए। और अब यह कहता है कि आधे दाम मेरे हैं, क्योंकि आधा काम मैंने किया है। लकड़हारे ने कहा कि यह बात सच है कि यह रहा पूरे दिन वहां और जितनी बार भी मैंने कुल्हाड़ी वृक्ष पर मारी इसने जोर से हूं कहा।

नसरुद्दीन ने कहा कि रुपए कहां हैं जो लकड़ी बेचने से मिले? उस लकड़हारे ने रुपए नसरुद्दीन के हाथ में दे दिए। उसने एक-एक रुपया जोर से फर्श पर गिराया–आवाज, खन्न की आवाज, फिर खन्न की आवाज। और एक-एक रुपए को गिरा कर वह लकड़हारे को देता गया। जब सारे रुपए दे दिए तो उसने उस आदमी से कहा कि तुम्हारा पुरस्कार तुम्हें मिल गया; तुमने हूं की थी, खन्न की आवाज तुमने सुन ली; संपत्ति आधी-आधी बांट दी गई।

शास्त्र को ही जो सब समझ कर बैठ रहेंगे, आखिर में उन्हें शब्द से ज्यादा कुछ भी मिल सकता नहीं। और रुपए की आवाज से कोई रुपया नहीं मिलता है। सत्य की आवाज से भी सत्य नहीं मिलता है।

उपदेश शब्द से दिया जा सकता है, लेकिन उपदेश शब्द के लिए कभी नहीं दिया जाता; दिया तो जाता है निशब्द के लिए। लेकिन चूंकि हम निशब्द को नहीं समझ पाते और मौन को समझना बहुत कठिन है, इसलिए शब्द का ही उपयोग करना होता है। लेकिन लाओत्से कहता है कि ऐसा भी उपदेश है जो मौन में दिया जाता है, और वही उपदेश हृदय को बदलता है।

लेकिन मौन की भाषा समझ में आए, तभी वह उपदेश दिया जा सकता है।

जैसे भाषाएं हैं–अब मैं हिंदी बोल रहा हूं; आपको हिंदी समझ में आती हो तो ही मैं जो बोल रहा हूं वह समझ में आ पाएगा। अगर मैं चीनी भाषा बोल रहा हूं और आपको समझ में नहीं आती, तो बात

समाप्त हो गई। जैसे भाषाएं हैं शब्द की, वैसे ही मौन की भाषा भी सीखनी पड़ती है।

मौन की भाषा परम भाषा है। और जब तक हम उस भाषा को, उस संवाद को न सीख लें, तब तक कोई लाओत्से, कोई बुद्ध, कोई जीसस देना भी चाहे संदेश, तो भी मौन में नहीं दे सकता। इसलिए लाओत्से को भी बोलना पड़ा। लेकिन वह दुखी है।
सभी जानने वाले बोलने के कारण दुखी हैं। क्योंकि उन्हें पूरा पता है, साफ है, कि जो वे बोल रहे हैं इससे कुछ हल होने का नहीं है। और डर यह भी है कि जो वे बोल रहे हैं वह कहीं लोगों के लिए शत्रु सिद्ध न हो जाए। खतरे बहुत हैं। शब्द मनोरंजन बन सकता है।

शब्द सुनने का एक नशा, एक व्यसन हो जा सकता है। शब्द मूर्च्छा बन सकता है। और शब्द एक तरह की मतांधता पैदा कर सकता है। और शब्द ज्ञान की भ्रांति दे सकता है। शब्द खतरनाक है। बिना जाने ऐसा लग सकता है कि मैं जानता हूं। शब्दों से सिर भर जाए तो भी आपका हृदय तो रिक्त ही रह जाता है। यह भरापन कहीं कोई समझ ले कि मेरी आत्मा का भरापन हो गया, तो भटकाव शुरू हो गया।

तो जानने वाले डरते रहे हैं बोलने से। बोलना पड़ा है। बोलना पड़ा है आपकी वजह से। क्योंकि न बोले भी कहा जा सकता है, लेकिन उसके लिए फिर आपको तैयार होना पड़ेगा। न बोले की अवस्था आपके भीतर हो, मौन आपके भीतर हो, तो गुरु मौन से भी कह दे सकता है। और जो मौन से कहा जाता है वही आपके प्राणों के प्राण तक प्रवेश करता है। शब्द कानों पर चोट कर पाते हैं, मस्तिष्क के तंतुओं को हिला जाते हैं, लेकिन जीवन की वीणा अछूती रह जाती है।

जीवन की वीणा तो सिर्फ मौन से ही स्पर्शित होती है। जो भी कहने योग्य है वह मौन से कहा जा सकता है। यह क्यों मौन पर जोर दे रहा है? लाओत्से का जोर सदा इस बात पर है कि जो सूक्ष्म है वही शक्तिशाली है। शब्द तो स्थूल हैं, वे सूक्ष्म नहीं; मौन सूक्ष्म है। और आप उस गहन सूक्ष्मता में हैं–आपका अस्तित्व, आपकी आत्मा–जहां तक कोई स्थूल पहुंच नहीं पाएगा। उस आत्मा में पहुंचने के लिए कोई द्वार भी तो नहीं है। द्वार होता तो स्थूल भी पहुंच जाता। वहां कोई दरार भी नहीं है। आपके बीइंग में, आपके अस्तित्व में कोई दरार भी नहीं है।

ताओ उपनिषद

ओशो